स्त्री का पत्र

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

श्री चरणकमलेषु!

आज पंद्रह वर्ष हो गये अपने विवाह को, मगर अब तक तुम्हें चिट्ठी नहीं लिखी। हमेशा तुम्हारे पास ही पड़ी रही। मुख-ज़बानी अनेक बातें तुम से सुनीं, तुम्हें भी सुनाईं। चिट्ठी-पाती लिखने की दूरी भी तो कहां हुई?

आज मैं आई हूं श्रीक्षेत्र का तीर्थ करने और तुम अपने ऑफिस के काम में जुटे हो। घोंघे के साथ जो संबंध शंख का है, कलकत्ता के साथ तुम्हारा वही नाता है। वह तुम्हारी देह से, तुम्हारे प्राण से जकड़ गया है। इस कारण तुमने छुट्टी की खातिर ऑफिस में दरखास्त नहीं दी। विधाता की यही मंशा थी, उन्होंने मेरी छुट्टी की दरखास्त मंज़ूर कर ली।

मैं तुम्हारे घर की मंझली बहू हूं। आज पंद्रह वर्ष उपरांत इस समुद्र-तट पर खड़ी होकर मैं जान पायी हूं कि जगत और जगदीश्वर के साथ मेरा एक रिश्ता और भी है। इसलिए आज साहस करके यह चिट्ठी लिख रही हूं। इसे फकत मंझली बहू की चिट्ठी मत समझना।

तुम्हारे संग, रिश्ते का लेख जिन्होंने मेरे भाग्य में लिखा था, उन्हें छोड़ कर जब इस संभावना का और किसी को भी आभास नहीं था, उसी ठेठ बचपन में मेरा भाई और मैं एक साथ ही सन्निपात के ज्वर से पीड़ित हुए थे। भाई तो चल बसा, मगर मैं बच गयी। पड़ोस की सब औरतें कहने लगीं, 'मृणाल लड़की है ना, इसलिए बच गयी, लड़का होती तो बच सकती थी भला? चोरी की विद्या में यमराज बड़े निपुण हैं, कीमती चीज़ पर ही उनकी आंख लगी रहती है!

मैं मरने के लिए पैदा नहीं हुई, यही खुलासा करने के लिए चिट्ठी लिखने बैठी हूं।

जिस दिन तुम्हारे दूर के मामा तुम्हारे मित्र नीरद को लेकर लड़की देखने आये, तब मेरी उम्र थी—बारह बरस। उज्जड़ दुर्गम देहात में मेरा घर था, जहां दिन में भी सियार बोलते हैं। स्टेशन से सात कोस बैलगाड़ी में चलने के बाद, डेढ़ कोस का कच्चा रास्ता पालकी से पार करने पर ही हमारे गांव पहुंचा जा सकता था। उस दिन तुम सबको कितनी परेशानी हुई थी! तिस पर हमारे पूर्वी बंगाल का भोजन; जिसका मखौल उड़ाना मामा आज भी नहीं भूलते।

तुम्हारी मां की बस एक ही ज़िद थी कि बड़ी बहू के रूप का अभाव मंझली बहू के द्वारा पूरा करना। नहीं तो भला इतना कष्ट उठा कर तुम लोग हमारे गांव क्यों आते? बंगाल में — तिल्ली, यकृत, अम्लशूल और लड़की के लिए खोज नहीं करती पड़ती। वे स्वयं आ कर दबोच लेते हैं; छुड़ाये नहीं छूटते।

बाबा का हृदय धक-धक करने लगा। मां दुर्गा का नाम जपने लगी। शहर के देवता को गांव का पुजारी कैसे तुष्ट करे? बेटी के रूप का भरोसा था। किन्तु, बेटी के रूप का गुमान कुछ भी मायने नहीं रखता। देखने वाला पारखी जो दाम निर्धारित करे वही उसका मूल्य होता है। अतएव हज़ार रूप-गुण होने पर भी लड़कियों का संकोच नहीं टूटता।

सारे घर का, नहीं-नहीं, समूचे मोहल्ले का वह आतंक मेरी छाती पर पत्थर के समान जम कर बैठ गया। उस दिन आकाश का समस्त आलोक व संसार का संपूर्ण सामर्थ्य, मानो दो परीक्षकों की दो जोड़ी आंखों के सामने, उस बारह वर्षीय अबोध बालिका को पेश करने की खातिर प्यादागिरी कर रहे हों। मुझे कहीं भी छिपने की ठौर नहीं मिली।

संपूर्ण आकाश का रुलाती हुई शहनाई बज उठी। मैं तुम्हारे घर आ पहुंची। मेरे तमाम गुण-दोषों का ब्योरेवार हिसाब लगा कर सभी गृहिणियों को यह मानना पड़ा कि भले कुछ भी हो, मैं सुंदर ज़रूर हूं। यह बात सुनते ही मेरी बड़ी जेठानी का मुंह चढ़ गया। मगर मेरे रूप की ज़रूरत ही क्या थी, बस, यही सोचती हूं? रूप नामक वस्तु को यदि किसी पुरातन पंडित ने गंगामाटी से गढ़ा हो तो उसका आदर-मान भी हो, किन्तु उसे तो विधाता ने केवल

अपनी मौज-मस्ती की रौ में निर्मित किया है। इसलिए तुम्हारे धर्म के संसार में उसका कोई दाम नहीं है।

मैं अनिंद्य रूपवती हूं, इस सच्चाई को भूलने में तुम्हें ज़्यादा वक्त नहीं लगा। मगर मुझ में बुद्धि भी है, यह बात तुम सबको कदम-कदम पर याद रखनी पड़ी। मेरी यह बुद्धि कितनी सहज-स्वाभाविक है कि तुम्हारे घर-परिवार में इतना समय बिताने पर भी वह आज दिन तक टिकी हुई है। मेरी इस बुद्धि के मारे मां बड़ी उद्विग्न रहती थी। नारी के लिए यह तो एक बला है, बला! बाधा वर्जनाओं को मान कर भी जिसे चलना है, यदि वह बुद्धि को मान कर चले तो ठोकर दर ठोकर उसका सर फूटेगा ही। लेकिन मैं क्या करूं, बताओ? तुम्हारे घर की बहू के लिए जितनी बुद्धि अपेक्षित है, उससे बहुत ज़्यादा बुद्धि विधाता ने भूल से दे डाली। अब उसे लौटाऊं भी तो किसको? तुम लोग मुझे पुरखिन कह कर दिन-रात कोसते रहे। कड़ी बातों से ही अक्षम को सांत्वना मिलती है, अतएव वह सब मैंने माफ किया।

मेरी एक बात तुम्हारे घर-परिवार से बाहर थी, जिसे कोई नहीं जानता। मैं छिप कर कविता करती थी। वह कूड़ा-करकट ही क्यों न हो, उस पर तुम्हारे अन्तःपुर की दीवार नहीं उठ सकी। वहीं मुझे मुक्ति मिलती थी। वहीं पर मैं, मैं हो पाती थी। मेरे भीतर मंझली बहू के अलावा जो कुछ भी है, उसे तुम लोगों ने कभी पसंद नहीं किया; पहचान भी नहीं सके। मैं कवि हूं, पंद्रह बरस तक यह भेद तुम्हारी पकड़ में नहीं आया।

तुम्हारे घर की प्रारंभिक स्मृतियों के बीच मेरे मन में जो स्मृति सबसे ज़्यादा कौंध रही है— वह है तुम लोगों की गौशाला। अन्तःपुर के जीने की बगल वाले कोठे में तुम्हारी गायें रहती हैं। सामने के आंगन को छोड़ कर उनके हिलने-डुलने के लिए और कोई जगह नहीं है। उसी आंगन के कोने में उन्हें भूसा डालने के लिए लकड़ी का एक नांद है। अल्ल-सवेरे तरह-तरह के कामों में चाकर उलझे रहते, भूखी गायें तत्क्षण नांद के किनारों को चाट-चाट कर, चबा-चबा कर गड्ढे डाल देती थीं। मेरे प्राण सिहर उठते। मैं थी देहात की लड़की—जिस घड़ी तुम्हारे घर में पहली बार आई, सारे शहर के बीच उस दिन वे ही दो गायें और तीन बछड़े मुझे चिर परिचित आत्मीय-से जान पड़े। जितने दिन नई बहू बन कर रही, खुद न खाकर, लुका-छिपा कर उन्हें खिलाती रही। जब सयानी हुई तो गायों के प्रति मेरी सहज ममता को लक्ष्य करके मेरे साथ हंसी-ठिठोली का रिश्ता रखने वाले, मेरे गौत्र के बारे में संदेह व्यक्त करने लगे।

मेरी बिटिया जन्म के साथ ही चल बसी। जाते समय उसने साथ चलने लिए मुझे भी पुकारा था। यदि वह ज़िन्दा रहती तो मेरे जीवन में जो कुछ महान है, जो कुछ सत्य है, वह सब मुझे ला देती, तब मैं मंझली बहू से एकदम मां बन जाती। एक घर-परिवार के बीच रह कर भी वह पूरे संसार की मां होती है। मुझे मां होने की पीड़ा ही मिलीं, मातृत्व का मुक्ति-वरदान प्राप्त नहीं हुआ।

मुझे याद है, अंग्रेज़ डॉक्टर को अंतःपुर का दृश्य देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ था और जच्चाघर पर तो नज़र पड़ते ही उसने झुंझला कर काफी बुरा-भला कहा था। बाहर सदर में तुम लोगों का छोटा-सा बगीचा है। बैठक में साज-शृंगार व असबाब की कोई कमी नहीं, मगर भीतर का भाग मानो ऊन-कढ़ाई की उलटी परत हो। वहां न कोई लज्जा, न कोई श्री और न कोई सजावट। वहां मद्धिम-सी रोशनी जला करती है। हवा चोर की तरह प्रवेश करती है। आंगन का कूड़ा-कचरा हटने का नाम नहीं लेता। फर्श व दीवारों पर समस्त कालिमा अक्षय रूप से विराजमान है। मगर डॉक्टर से एक गलती हो गयी थी। उसने सोचा था कि शायद इससे हमें आठों पहर दुख होता होगा। पर सच्चाई एकदम उलटी है। अनादर नाम की चीज़ राख के समान होती है। शायद भीतर ही भीतर वह आग को छिपाये रहती है, बाहर से ताप को प्रकट नहीं होने देती। जब आत्म-सम्मान कम हो जाता है, तब अनादर भी अन्याय नहीं लगता। उससे वेदना महसूस नहीं होती। तभी तो नारी दुख का अनुभव करने में शर्माती है। इसीलिए मैं कहती हूं, स्त्री-जाति का दुखी होना अवश्यम्भावी है, अगर यही तुम्हारी व्यवस्था है, तो फिर जहां तक संभव हो, उसे अनादर में रखना ही उचित है। आदर से दुःख की व्यथा और बढ़ जाती है।

चाहे जिस तरह रखो, उसमें दुख ही है, इसे याद करने की बात कभी मेरे मन में ही नहीं आयी। जच्चाघर

में जब मौत सिरहाने आकर खड़ी हो गयी थी, तब भी मुझे डर नहीं लगा। हमारा जीवन ही क्या है, जो मौत से डरना पड़े। आदर और यत्न से जिनके प्राण कसकर बंधे रहते हैं, उन्हें ही मरने में झिझक होती है। यदि उस दिन यमराज मुझे खींचते तो मैं उसी तरह उखड़ जाती, जिस तरह पोली ज़मीन से गुच्छों सहित घास सहज ही उखड़ आती है। बंगाल की बेटी तो बात-बात में मरने को आमादा रहती है। किन्तु, इस तरह मरने में क्या बहादुरी है? हमारे लिए मरना इतना आसान है कि मरते लज्जा आती है।

मेरी बिटिया तो सांध्य-तारे की नाईं क्षण भर के लिए उदित होकर अस्त हो गई। मैं फिर से अपने नित्य-कर्म और गाय-बछड़ों में खो गयीं। और इसी ढर्रे में मेरा जीवन जैसे-तैसे निःशेष हो जाता, आज तुम्हें यह चिट्ठी लिखने की दरकार ही नहीं होती। किन्तु, कभी-कभार हवा एक सामान्य-सा बीज उड़ा कर ले आती है और पक्के दालान में पीपल का अंकुर फूट उठता है; और अंत में उसी से काठ-पत्थर की छाती विदीर्ण हो जाती है। मेरे घर-संसार के माकूल बंदोबस्त में भी जीवन का एक छोटा-सा कण न जाने कहां से उड़ कर आन पड़ा कि तभी से दरार पड़नी शुरू हो गयी।

विधवा मां की मृत्यु के बाद मेरी बड़ी जेठानी की बहन बिन्दु ने जिस दिन अपने चचेरे भाइयों के अत्याचार से तंग आकर हमारे घर में अपनी दीदी का आश्रय लिया, तब तुम लोगों ने सोचा कि यह कहां की आफत आ पड़ी। आग लगे मेरे स्वभाव को, क्या करती बोलो— जब देखा तुम सभी मन ही मन विरक्त हो उठे, तब उस निराश्रिता लड़की के लिए मेरा समूचा मन कमर बांध कर उद्यत हो उठा। पराये घर में, पराये लोगों की अनिच्छा के बावजूद आश्रय लेना—यह कितना बड़ा अपमान है! जिसे विवश होकर यह अपमान भी मंज़ूर करना पड़े, क्या एक कोने में ठेलकर उसकी उपेक्षा की जा सकती है?

तत्पश्चात् मैंने अपनी बड़ी जेठानी की दशा देखी। उन्होंने नितांत द्रवित होकर असहाय बहन को अपने पास बुलाया था। किन्तु, जब स्वामी की अनिच्छा का आभास हुआ, तब वे दिखावा करने लगीं जैसे कोई अचीती बला आ पड़ी हो। जस-तस दूर हो जाय तो जान बचे। अपनी अनाथ बहन के प्रति खुले मन से स्नेह प्रदर्शित कर सकें, उनमें इतना साहस नहीं था। वे पतिव्रता जो थीं! उनका यह संकेत देख कर मेरा मन और भी व्यथित हो उठा। मैंने देखा, बड़ी जेठानी ने विशेष तौर से सबको दिखा-दिखा कर बिन्दु के खाने-पहनने की ऐसी भौंडी व्यवस्था की और उसे घर में सर्वत्र दासी-वृत्ति के काम इस तरह सौंप दिये कि मुझे केवल दुख ही नहीं घोर लज्जा भी हुई। वे सबके सामने यह प्रमाणित करने में लगी रहती थीं कि हमारे घरवालों को बिन्दु झांसे में आकर बहुत ही सस्ते दामों में हाथ लग गयी है। न जाने कितना काम करती है और खर्च के हिसाब से बिल्कुल सस्ती।

बड़ी जेठानी के पितृ-वंश में कुल के अलावा कुछ भी बड़ी बात नहीं थी। रूप भी नहीं था। धन भी नहीं था। मेरे श्वसुर के पांव पड़ने पर, किस तरह तुम लोगों के घर में उनका ब्याह हुआ था, यह सब तो जानते ही हो। उनके विवाह से इस वंश में भारी अपराध हुआ है, वे हमेशा यही सोचा करती थीं। इसलिए यथासंभव अपने-आपको सब बातों से अलग रख कर वे तुम्हारे घर में निहायत अकिंचन होकर रहने लगी थीं।

किन्तु, उनके इस साधु-दृष्टांत से मैं बड़ी मुश्किल में पड़ जाती थी। मैं किसी भी तरह अपने-आपको इतना छोटा नहीं बना पाती थी। मैं जिस बात को अच्छा समझती हूं, उसे किसी और की खातिर बुरा मानना, मुझे उचित नहीं जान पड़ता, जिसके बहुतेरे प्रमाण तुम्हे मिल चुके हैं।

बिन्दु को मैं अपने कमरे में खींच लायी। दीदी कहने लगीं, 'मंझली बहू गरीब घर की बेटी का माथा खराब करने लगी है।' वे सबके पास जाकर हरदम इस ढंग से मेरी शिकायत करती रहतीं, जैसे कोई विषम कहर ढा दिया। किन्तु, मैं अच्छी तरह जानती हूं कि अपने बचाव से वे मन की मन ही संतुष्ट थीं। अब सारा दोष मेरे मत्थे आ पड़ा। अपनी बहन के प्रति वे स्वयं जो स्नेह प्रकट नहीं कर सकती थीं, मेरे द्वारा वह स्नेह चरितार्थ होने पर उनका मन हलका होने लगा। मेरी बड़ी जेठानी बिन्दु की आयु से दो-एक बरस बाद देने की चेष्टा किया करती थीं। किन्तु, उसकी उम्र चौदह साल से कम नहीं थी, यदि एकांत में उनसे कहा जाता तो यह कोई असंगत बात

नहीं होती। तुम तो जानते ही हो, वह देखने में इतनी भद्दी है कि फर्श पर गिरने से उसका सर फूट जाय तो लोगों को फर्श की ही चिन्ता होगी। यही कारण है कि माता-पिता के अभाव में कोई ऐसा न था, जिसे उसके ब्याह की फिक्र हो और ऐसे लोग भी कितने हैं, जिनके सीने में यह दम हो कि उससे ब्याह रचाएं।

बिन्दु बहुत डरती-सहमती मेरे पास आयी। जैसे मेरी देह उससे छू जाय तो मैं सहन नहीं कर पाऊंगी। विश्व-संसार में जन्म लेने के निमित्त मानो उसकी कोई शर्त ही न हो। इसीलिए ऐसा एक भी कोना नहीं छोड़ना चाहते थे, जिससे वह अनावश्यक जिन्स की तरह पड़ी रह सके। अनावश्यक कूड़े-कचरे को घर के आस-पास अनायास ही स्थान मिल जाता है, क्योंकि मनुष्य उसे अनदेखा कर जाता है, किन्तु अनावश्यक लड़की एक तो अनावश्यक होती है और उसे भूल पाना भी कठिन होता है। इसी कारण उसे घूरे पर भी स्थान नहीं मिलता। फिर भी यह करने की रंचमात्र भी गुजांइश नहीं है कि उसके चचेरे भाई ही संसार में परमावश्यक पदार्थ हैं। किन्तु वे लोग हैं बड़े मज़े में।

इसलिए, जब मैं बिन्दु को अपने कमरे में लायी तो उसकी छाती धक-धक करने लगी। उसे भयभीत देख कर मुझे बड़ा दुख हुआ। मेरे कमरे में उसके लिए थोड़ी-सी जगह है, यह बात मैंने उसे बड़े लाड़-प्यार से समझायी।

किन्तु, मेरा कमरा फकत मेरा ही तो कमरा नहीं था। इसलिए मेरा काम सरल नहीं हुआ। दो-चार दिन मेरे साथ रहने पर ही उसके शरीर में लाल-लाल न जाने क्या उभर आया? शायद अम्हौरी या ऐसी ही कुछ बीमारी होगी। तुमने कहा बसंत। क्यों न हो, वह बिन्दु थी न? तुम्हारे मोहल्ले के एक अनाड़ी डॉक्टर ने कहा कि दो-एक दिन और पड़ताल किये बिना ठीक से कुछ नहीं कहा जा सकता। किन्तु, दो-एक दिन का सब्र किसे होता? बिन्दु तो अपनी बीमारी की लज्जा से ही मरी जा रही थी। मैंने कहा, बसंत है तो है, मैं उसके साथ अपने जच्चाघर में रहूंगी; किसी को कुछ भी करने की ज़रूरत नहीं। इस बात पर तुम सभी भड़क कर मेरे लिए संहार की प्रतिमूर्ति बन गये, यही नहीं, जब बिन्दु की दीदी भी छद्म विरक्त भाव से उस हतभागी लड़की को अस्पताल भेजने का प्रस्ताव करने लगीं, तभी उसके शरीर पर से तमाम लाल-लाल दाग विलुप्त हो गये। पर मैंने देखा!— तुम सब तो और अधिक व्यग्र हो उठे। कहने लगे अब तो निश्चित रूप से बंसत बैठ गयी है। क्यों न हो, वह बिन्दु थी न?

अनादृत पालन-पोषण का एक बड़ा गुण है कि वह शरीर को एकदम अजर-अमर कर देता है। बीमारी आस-पास फटक ही नहीं पाती। मरने के रास्ते बिल्कुल बन्द हो जाते हैं। रोग उसके साथ मखौल कर गया, उसे कुछ भी नहीं हुआ। लेकिन यह बात अच्छी तरह समझ में आ गयीं कि संसार मे असहाय व्यक्ति को आश्रय देना ही सबसे कठिन है। जिसे आश्रय की दरकार जितनी अधिक होती है, आश्रय की बाधाएं भी उसके लिए ही विषम बन जाती हैं।

बिन्दु के मन से जब मेरा भय मिट गया तब उसे और दुष्ट-ग्रह ने दबोच लिया। वह मुझे ऐसी मूर्ति तो इस मायवी-संसार में कभी नज़र नहीं आयी। पुस्तकों में पढ़ा अवश्य था, वह भी स्त्री-पुरुष के बीच ही। बहुत दिनों से ऐसी कोई घटना नहीं हुई कि मुझे अपने रूप का खयाल आता। अब इतने दिन बाद यह कुरूप लड़की मेरे उसी रूप पर बौरा गयी। आठों पहर मेरा मुंह निहारने पर भी उसके नयनों की आस कभी बुझ ही नहीं पाती थी। कहती, दीदी, तुम्हारी यह सलौनी सूरत मेरे अलावा किसे भी नज़र नहीं आयी।' जिस दिन मैं स्वयं अपना जूड़ा बांध लेती, उस दिन वह बहुत रूठ जाती। मेरी केश-राशि को अपने दोनों हाथों में झुलाने मात्र से उसके आनन्द की सीमा नहीं रहती। किसी दावत में जाने के अलावा मुझे साथ-शृंगार की ज़रूरत ही नहीं पड़ती थी। लेकिन बिन्दु मुझे तंग कर-करके हमेशा थोड़ा-बहुत सजाती रहती। सचमुच, वह लड़की मेरे पीछे पागल हो गयी थी।

तुम्हारे घर के भीतर हिस्से में कहीं खाली ज़मीन नहीं थी। उत्तर दिशा की दिवार में नाली के किनारे न जाने कैसे एक गाब का पौधा उग आया? जिस दिन देखती कि उस गाब के पौधे में नयी लाल-लाल कोंपले निकल आयी हैं, उसी दिन जान पड़ता कि धरती पर वास्तव में बसंत आ गया है। और जिस दिन मेरी घर-गृहस्थी में इस अनादृत लड़की के चित्त का ओर-छोर इस तरह रंगीन हो उठा, उस दिन मैंने जाना कि हृदय के जगत में भी बसंत की बयार बहती है— वह किसी स्वर्ग-लोक से आती है, गली के मोड़ से नहीं।

बिन्दु की प्रीत के दुःसह वेग ने मुझे अस्थिर का डाला था। मानती हूं कि मुझे कभी-कभार उस पर गुस्सा आ

जाता। किन्तु, उस प्रीत की भव्य अनुभूति में मुझे अपने स्वरूप की ऐसी छवि दिखलायी पड़ी जो पहले कभी नज़र नहीं आयी। वह मेरा मुक्त स्वरूप है। मुक्त छवि है।

इधर मैं बिन्दु जैसी लड़की को इतना लाड़-दुलार कर रही हूं, यह तुम लोगों को बड़ी ज़्यादती लगी। उस नुक्ताचीनी व खटपट को कोई अंत नहीं था। जिस दिन मेरे कमरे से बाजूबंद की चोरी हुई, उस दिन इस बात का आभास देते हुए तुम लोगों को तनिक भी लज्जा नहीं आयी कि उस चोरी में किसी न किसी तरह बिन्दु का हाथ है। जब स्वदेशी आन्दोलन में लोगों के घर की तलाशियां होने लगीं, तब तुम लोग अनायास ही यह संदेह कर बैठे कि बिन्दु पुलिस द्वारा रखी गयी स्त्री-गुप्तचर है। उसका और तो कोई प्रमाण नहीं था, प्रमाण केवल यही था कि वह बिन्दु थी!

तुम्हारे घर की दासियां उसका कोई भी काम करने से मना कर देती थीं। उनमें से किसी भी दासी को मैं उसके काम की फरमाइश करती, तब भी वह लड़की संकोच के मारे एकदम जड़वत् हो जाती थी। इन्हीं सब कारणों से उस पर मेरा खर्च दिन-ब-दिन बढ़ता गया। मैंने खासतौर से एक अलग दासी रख ली। यह भी तुम लोगों को गवारा नहीं हुआ। बिन्दु को पहनने के लिए जो कपड़े देती थी, उन्हें देख कर तुम इतने नाराज़ हुए मेरा हाथ-खर्च की बंद कर दिया। दूसरे ही दिन मैंने सवा रुपये जोड़े की मिल की गाढ़ी व कोरी धोती पहननी शुरू कर दी। और जब मोती की माँ मेरी झूठी थाली उठाने के लिए आयी तो मैंने उसे मना कर दिया। मैंने खुद जूठा भात बछड़े को खिलाया और आंगन के नल पर बासन मांजे। एक दिन अकस्मात् इस दृश्य को देख कर तुम खुश नहीं हुए। मेरी खुशी के बिना तो चल सकता है, पर तुम्हारी खुशी के बिना नहीं चल सकता, यह सुबुद्धि आज दिन तक मेरे भेजे में नहीं आयीं।

इधर ज्यों-ज्यों तुम लोगों का रोष बढ़ता जा रहा था, त्यों-त्यों बिन्दु की उम्र भी बढ़ती जा रही थी। इस स्वाभाविक बात पर तुम लोग अस्वाभाविक रूप से विभ्रत हो उठे थे। एक बात याद करके मुझे आश्चर्य होता रहा है कि तुम लोगों ने बिन्दु को ज़बरदस्ती अपने घर से खदेड़ क्यों नहीं दिया? मैं खूब जानती हूं कि तुम लोग मन ही मन मुझसे डरते थे। विधाता ने मुझे बुद्धि दी है, भीतर इस बात की तवज्जो दिये बिना तुम लोगों से रहा नहीं जाता था।

अंत में अपनी शक्ति से बिन्दु को विदा करने में असमर्थ होकर तुम लोगों ने प्रजापति देवता की शरण ली। बिन्दु का वर ठीक हुआ। बड़ी जेठानी बोलीं, 'जान बची, मां काली ने अपने वंश की लाज रख ली।'

वह कैसा था, मैं नहीं जानती। तुम लोगों से ही सुना कि सब तरह से अच्छा है। बिन्दु मेरे पांवों से लिपट कर रोने लगी। 'दीदी, मेरा ब्याह क्यों कर रही हो भला?'

मैंने उसे समझाते-बुझाते कहा, 'बिन्दु, डर मत, सुना कि तेरा वर अच्छा है।'

बिन्दु बोली, 'अगर वर अच्छा है तो मुझ में भला ऐसा क्या है, जो उसे पसंद आ सके।'

वर-पक्ष वालों ने तो बिन्दु को देखने तक की इच्छा ज़ाहिर नहीं की। बड़ी दीदी इससे बड़ी आश्वस्त हुईं।

लेकिन बिन्दु रात-दिन रोती रहती। चुप होने का नाम ही नहीं लेती। उसे क्या कष्ट है, मैं जानती थी। बिन्दु के लिए मैंने घर में बहुत बार झगड़ा किया था, लेकिन उसका ब्याह रुक जाय, यह बात कहने का साहस नहीं होता था। कहती भी किसी बूते पर? यदि मैं मर जाऊं तो इसकी क्या गति होगी?

एक तो लड़की, तिस पर काली-कुरूप लड़की—किसके घर जा रही है? वहां उसकी क्या दशा होगी? इन बातों की चिन्ता न करना ही उचित है। सोचती तो प्राण सिहर-सिहर उठते।

बिन्दु ने कहा, 'दीदी, ब्याह के अभी पांच दिन और हैं। इस बीच क्या मुझे मौत नहीं आयेगी?'

मैंने उसे खूब धमकाया। किन्तु अन्तर्यामी जानते हैं, यदि स्वाभाविक ढंग से बिन्दु की मृत्यु हो जाती तो मैं राहत की सांस लेती।

विवाह के एक दिन पहले बिन्दु ने अपनी दीदी के पास जाकर कहा, 'दीदी, मैं गौशाला में पड़ी रहूंगी, जो कहोगे वही करूंगी। तुम्हारे पांव पड़ती हूं, मुझे इस तरह मत धकेलो।

कुछ दिनों से दीदी की आंखों में चोरी-चोरी आंसू झर रहे थे, उस दिन भी झरने लगे। किन्तु, सिर्फ़ हृदय ही तो नहीं होता, शास्त्र भी तो उन्होंने कहा, 'बिंदी, तू क्या जानती नहीं कि पति ही सब-कुछ है—स्त्री की गति स्त्री की मुक्ति। भाग्य में यदि दुख बदा है तो उसे कोई मिटा नहीं सकता।'

असली बात तो यह है कि कहीं कोई रास्ता नहीं था। बिन्दु को ब्याह तो करना ही पड़ेगा। फिर जो हो सो हो।

मैं चाहती थी कि विवाह हमारे घर से हो। किन्तु, तुम लोग कह बैठे, वर के ही घर में हो, उनके कुल की यही प्रथा है।

मैं समझ गयी, बिन्दु के विवाह में यदि तुम लोगों को खर्च करना पड़े तो तुम्हारे गृह-देवता उसे किसी भांति सह नहीं सकेंगे। इसलिए चुप रह जाना पड़ा। किन्तु एक बात तुम में से कोई नहीं जानता। दीदी को बताने की इच्छा थी, मगर बताई नहीं, वरना वे डर के मारे मर जातीं। मैंने अपने थोड़े-बहुत गहने लेकर चुपचाप बिन्दु का साज-सिंगार कर दिया। सोचा, शायद दीदी की नज़र में पड़ा होगा। किन्तु, उन्होंने जैसे देख कर भी नहीं देखा। दुहाई है धर्म की, इसके लिए तुम उन्हें क्षमा कर देना।

जाने से पहले बिन्दु मुझसे लिपट कर बोली, 'दीदी तो क्या तुम लोगों ने मुझे एकदम ही त्याग दिया।'

मैंने कहा, 'ना बिन्दु, तुम चाहे जैसी स्थिति में रहो, मैं तुम्हें प्राण रहते नहीं त्याग सकती।'

तीन दिन बीते। तुम्हारे ताल्लुके की प्रजा ने, खाने के लिए तुम्हें जो भेड़ा दिया था, उसे तुम्हारी जठराग्नि से बचाकर मैंने कोयले की, नीचे वाली कोठरी के एक कोने में बांध दिया था। अल्ल-सवेरे ही मैं खुद जाकर उसे दाना-पानी दे आती। तुम्हारे चाकरों पर दो-एक दिन तो ऐतबार किया, मगर उसे खिलाने की बजाय, उसी को खा जाने की ललक उनमें ज़्यादा थी।

उस दिन सवेरे कोठरी में गयी तो देखा, बिन्दु एक कोने में दुहरी होकर बैठी है। मुझे देखते ही मेरे पांवों में गिर कर चुपचाप रोने लगी।

बिन्दु का पति पागल था!

'सच कह रही है, बिन्दी?'

'इतना बड़ा झूठ तुम्हारे सामने बोल सकती हूं, दीदी? वे पागल हैं। ससुर की राय नहीं थी, इस विवाह के लिए—किन्तु वे मेरी सास से यमराज की तरह डरते हैं। ब्याह के पहले ही वे काशी चले गये। सास ने हठपूर्वक अपने लड़के ब्याह कर दिया।'

मैं वहीं कोयले की ढेरी पर बैठ गयी। औरत को औरत पर दया नहीं आती। सास कहती है, यह लड़की थोड़े ही है। लड़का पागल है तो क्या हुआ? है तो पुरुष ही।'

बिन्दु का पति पहली नज़र में ठीक पागल जैसा नहीं लगता। किन्तु, कभी-कभार उस पर उन्माद सवार हो जाता कि ताला लगा कर उसे कमरे में रखना पड़ता। विवाह की रात वह ठीक था, किन्तु रात भर जगने व अन्य झंझटों के फलस्वरूप दूसरे ही दिन से उसका माथा बिल्कुल खराब हो गया। बिन्दु दोपहर को पीतल की थाली में भात खाने बैठी थी। सहसा उसके पति ने भात-सहित थाली उठा कर फेंक दी। हठात् न जाने क्यों उसे महसूस हुआ कि बिन्दु स्वयं रानी रासमणि है। नौकर ने निश्चय ही सोने का थाल चुरा कर रानी को अपने ही थाल में भात परोसा है। यही उसके क्रोध का कारण था। बिन्दु तो डर के मारे मरी जा रही थी। तीसरी रात जब सास ने उसे पति के कमरे मे सोने के लिए कहा तो बिन्दु के प्राण सूख गये। सास को क्रोध आने पर कुछ भी होश नहीं रहता था। वह भी पागल थी, किन्तु पुरी तरह नहीं, इसलिए वह ज़्यादा घातक थी। बिन्दु को कमरे में जाना ही पड़ा। उस रात स्वामी काफी शांत रहा। किन्तु प्रच्छन्न आतंक से बिन्दु का शरीर काठ-सा हो गया। स्वामी जब बहुत रात ढलने पर सो गया तो वह किस कौशल से भाग कर चली आयी इसका विस्तृत विवरण लिखने की ज़रूरत नहीं है।

घृणा व क्रोध के मारे मेरा समूचा शरीर जलने लगा। मैंने कहा, 'ऐसे धोखे का ब्याह, ब्याह ही नहीं है। बिन्दु तू जैसे रहती थी, वैसे ही मेरे पास रह। देखूं तुझे कौन ले जाता है?'

तुम लोगों ने उज्र किया, 'बिन्दु झूठ बोलती है।'

मैंने कहा, 'उसने कुछ भी झूठ नहीं बताया।'

तुम लोगों ने पूछा, 'तुम्हें क्योंकर पता चला?'

मैंने कहा, 'मैं अच्छी तरह जानती हूं।'

तुम लोगों ने भय दिखाया, 'बिन्दु के ससुराल वालों ने पुलिस को रपट कर दी तो मुश्किल में पड़ जायेंगे।'

मेरा जवाब था, 'क्या अदालत इस पर गौर नहीं करेगी कि धोखे से पागल व्यक्ति के साथ उसका ब्याह किया है।'

तुमने कहा, 'तो क्या इसके लिए कोर्ट-कचहरी जायेंगे? क्यों, हमें क्या पड़ी है?'

मैंने कहा, 'अपने गहने बेचकर, जो बन पड़ेगा, करूंगी।'

तुमने कहा, 'वकील के घर चक्कर काटोगी?'

भला इसका क्या जवाब देती? सर पीटने के अलावा दूसरा चारा ही क्या था?

उधर बिन्दु की ससुराल से आकर उसके जेठ ने बाहर बड़ा हंगामा कर दिया। थाने में रपट करने की बार-बार धमकी देने लगा।

मुझे में क्या शक्ति थी, नहीं जानती—किन्तु, कसाई के हाथ से गाय प्राण छुड़ा कर मेरे आश्रय में आयी है, उसे पुलिस के डर से फिर कसाई के हवाले कर दूं, मेरा मन किसी भी तरह यह बात मानने के लिए तैयार नहीं था। मैंने चुनौती स्वीकार करते कहा, 'करने दो थाने में खबर।'

इतना कह कर मैंने सोचा कि इसी वक्त बिन्दु को अपने सोने के कमरे में ले जाकर भीतर से ताला जड़ दूं। मैंने सब जगह तलाश की, बिन्दु का कहीं पता नहीं चला। तुम लोगों के साथ जब मेरी बहस चली रही थी, तब बिन्दु ने स्वयं बाहर जाकर जेठ के आगे आत्म-समर्पण कर दिया था। वह समझ गयीं, यदि उसने घर नहीं छोड़ा तो मैं संकट में पड़ जाऊंगी।

बीच में भाग आने से बिन्दु ने अपना दुख और बढ़ा लिया। तर्क यह था कि उसका लड़का उसे खाये तो नहीं जा रहा था। अयोग्य पति के दृष्टांत दुनिया में दुर्लभ नहीं हैं। उसकी तुलना में तो उसका बेटा सोने का चांद है।

बड़ी जेठानी ने कहा, 'जिसकी किस्मत ही खराब हो, उसके लिए दुख करना व्यर्थ है। पागल-वागल कुछ भी हो है तो स्वामी ही न!'

एक स्त्री अपने कोढ़ी-पति को कंधों पर बिठाकर वेश्या के घर ले गयी थी, सती-साध्वी का वह दृष्टांत तुम सबके मन में मचल रहा था। दुनिया के इतिहास मे कायरता के उस शर्मनाक आख्यान का प्रचार करते हुए तुम लोगों के पौरुष को रंगमात्र भी संकोच नहीं हुआ। इसलिए मानव-जन्म पाकर भी बिन्दु के व्यवहार पर तुम लोग क्रोध कर सके, तुम्हारा सर नहीं झुका। बिन्दु के लिए मेरी छाती फटी जा रही थी, किन्तु तुम लोगों के लिए मेरी लज्जा का अंत नहीं था। मैं तो गांव की लड़की हूं, तिस पर तुम लोगों के घर आ पड़ी; फिर भगवान ने न मालूम किस तरह मुझे ऐसी बुद्धि दे डाली। तुम लोगों की ये सब नीति-कथाएं मेरे लिए नितांत असह्य थीं।

मैं निश्चय-पूर्वक जानती थी कि बिन्दु मर भले ही जाय, अब हमारे घर नहीं आयेगी। किन्तु, मैं तो उसे ब्याह के एक दिन पहले दिलासा दे चुकी थी कि प्राण रहते उसे छोड़ूंगी नहीं। मेरा छोटा भाई शरत् कलकत्ता के एक कॉलेज में पढ़ रहा था। तुम तो जानते ही हो कि तरह-तरह की वालंटियरी करना, प्लेग वाले मोहल्लों में चूहे मारना, दामोदार में बाढ़ आने की खबर सुनकर दौड़ पड़ना— इन सब बातों में उसका इतना उत्साह था कि एफ.ए. की परीक्षा में लगातार दो मर्तबा फेल होने पर भी उसके जोश में कोई कमी नहीं आयी। मैंने उसे बुला कर कहा, 'जैसे भी हो, बिन्दु की खबर पाने का बन्दोबस्त तुझे करना ही पड़ेगा, शरत! मुझे चिट्ठी लिखने का बिन्दु साहस नहीं जुटा पायेगी। लिखने पर भी मुझे मिल नहीं सकेगी।'

इस काम की बजाय यदि मैं उसे डाका डाल कर बिन्दु को लाने की बात कहती या उसके पागल पति का सर फोड़ने का आदेश करती तो उसे ज़्यादा खुशी होती।

शरत् के साथ बातचीत कर रही थी कि तुमने कमरे में आते ही पूछा, 'फिर यह क्या हंगामा कर रही हो?'

मैंने कहा, 'वही जो शुरू से करती आयी हूं। यह हंगामा तो तभी से चालू है जब से तुम्हारे घर आयी हूं— किन्तु इस श्रेय तो तुम्हीं लोगों को है।'

तुमने जिज्ञासा की, 'बिन्दु को लेकर फिर कहीं छिपा रखा है क्या?'

मैंने कहा, 'बिन्दु आती तो उसे ज़रूर छिपा कर रख लेती। किन्तु, वह अब आयेगी नहीं, तुम निश्चित रहो।'

शरत् को मेरे पास देख कर तुम्हारा संदेह और भी बढ़ गया। मैं जानती थी कि हमारे घर में शरत् का आना-जाना तुम लोगों को पसन्द नहीं है। तुम्हें आशंका थी कि ले डूबेगा। इसीलिए मैं भैया-दूज का तिलक भी किसी के साथ भिजवा देती थी, उसे घर नहीं बुलाती थी।

तुम्हीं से सुना कि बिन्दु फिर भाग गयी है। उसका जेठ तुम्हारे घर खोजने आया है। सुनते ही मेरी छाती शूलों से बिंध गयी। हतभागिन का असह्य कष्ट तो समझ गयी, मगर कुछ भी करने का उपाय नहीं था।

शरत् इसकी खोज-खबर लेने दौड़ा। सांझ की वेला लौटकर मुझसे बोला, 'बिन्दु अपने चचेरे भाइयों के घर गयी थी, किन्तु उन्होंने अत्यंत क्रुद्ध होकर उसी समय फिर उसे ससुराल पहुंचा दिया। इसके लिए उन्हें गाड़ी-किराया और हरजाने का जो दण्ड भोगना पड़ा उसकी चुभन अब भी मिटी नहीं है।'

तुम्हारी चाची तीर्थयात्रा के लिए श्रीक्षेत्र जाते समय तुम्हारे यहां आकर ठहरीं। मैंने तुमसे आग्रह किया, मैं भी जाऊंगी।'

सहसा मेरे मन में धर्म के प्रति यह श्रद्धा देखकर तुम इतने खुश हुए कि तनिक भी आपत्ति नहीं की। तुम्हें इस बात का भी ध्यान था कि यदि मैं कलकत्ता रही तो फिर किसी दिन बिन्दु को लेकर फसाद कर बैठूंगी। मेरी वजह से तुम्हें काफी परेशानी थी।

मुझे बुधवार को जाना था; रविवार को ही सब ठीक-ठाक हो गया। मैंने शरत् को बुलाकर कहा, 'जैसे भी हो, बुधवार को पुरी जाने वाली गाड़ी में तुझे बिन्दु को बिठा देना होगा।'

शरत् का चेहरा खिल उठा वह बोला, तुम निंश्चित रहो दीदी, मैं उसे गाड़ी में बिठाकर, पुरी तक चला चलूंगा। इसी बहाने जगन्नाथ के दर्शन भी हो जायेंगे।

उसी दिन शाम को शरत् फिर आया। उसका मुंह देखते ही मेरा दिल बैठा गया। मैंने पूछा, 'क्या बात है, शरत्? शायद कोई उपाय नहीं हुआ।'

वह बोला, 'नहीं।'

मैंने पूछा 'क्या उसे राजी नहीं कर पाये?'

उसने कहा, 'अब ज़रूरत भी नहीं है। कल रात अपने कपड़ों में आग लगा कर उसने आत्महत्या कर ली। उस घर के जिस भतीजे के साथ मैंने मेलजोल बढ़ाया था, उसी से खबर मिली। हां, तुम्हारे नाम वह एक चिट्ठी रख गयी थी, किन्तु वह चिट्ठी उन्होंने नष्ट कर दी।'

चलो शांति हुई!

गांव भर के लोग भन्ना उठे। कहने लगे, 'कपड़ों में आग लगा कर मर जाना तो अब लड़कियों के लिए फैशन हो गया है।'

तुम लोगों ने कहा, 'अच्छा नाटक है।' हुआ करे। किन्तु नाटक का तमाशा केवल बंगाली लड़कियों की साड़ी पर ही क्यों होता है, बंगाली वीर-पुरुषों की धोतियों पर क्यों नहीं होता? इस पर भी तो विचार करना चाहिए।

ऐसा ही था बिन्दी का दुर्भाग्य। जितने दिन ज़िन्दा रही, न रूप का यश मिला और न गुण का। मरते समय भी ज़रा सोच-समझ कर कुछ ऐसे ढंग से मरती कि दुनिया-भर के पुरुष खुशी से ताली बजा उठते। यह भी नहीं सूझा उसे। मर कर भी उसने लोगों को नाराज़ ही किया।

दीदी कमरे में छिप कर रोई। किन्तु उस रोने में एक सान्त्वना थी। कुछ भी हुआ, जान तो बची। मर गयी, यही क्या कम है? ज़िन्दा रहती तो न जाने क्या होता?

मैं श्रीक्षेत्र में आ पहुंची हूं। बिन्दु के आने की अब कोई ज़रूरत नहीं रही। किन्तु, मुझे ज़रूरत थी।

लोग जिसे दुख मानते हैं, वह तुम्हारी गृहस्थी में मुझे कभी नहीं मिला। तुम्हारे घर में खाने-पहनने की कोई कमी नहीं थी। तुम्हारे बड़े भाई का चरित्र चाहे जैसा हो, तुम्हारे चरित्र में ऐसा कोई दोष नहीं, जिसके लिए विधाता को बुरा कह सकूं। यदि तुम्हारा स्वभाव बड़े भाई की तरह होता तो भी शायद मेरे दिन इसी तरह कट जाते और मैं अपनी सती-साध्वी बड़ी जेठानी की तरह पति-परमेश्वर को दोष न देकर विश्व-देवता को ही दोष देने की चेष्टा करती। अतएव, मैं तुमसे कोई शिकवा-शिकायत नहीं करना चाहती। मेरी चिट्ठी का कारण दूसरा है।

किन्तु, मैं अब माखन-बढ़ाल की गली के उस सत्ताईस नम्बर वाले घर में लौट कर नहीं आऊंगी। मैं बिन्दु को देख चुकी हूं। इस संसार में नारी का सच्चा परिचय क्या है, वह मैं पा चुकी हूं। और कुछ भी जानने की ज़रूरत नहीं।

मैंने यह भी देखा हां, वह लड़की ही थी, फिर भी भगवान ने उसका परित्याग नहीं किया। उस पर तुम लोगों का चाहे कितनी ही ज़ोर क्यों न रहा हो, उस ज़ोर की सीमा है। वह अपने हतभागे मानव-जीवन से बड़ी थी। तुम मनमाने ढंग से, अपने दस्तूर से, उसके जीवन को चिरकाल के लिए अपने पांवों तले दबा कर रख सकते, तुम्हारे पांव इतने लंबे नहीं हैं। मृत्यु तुम लोगों से बड़ी है! अपनी मृत्यु के बीच वह महान है। वहां बिन्दु केवल बंगाली घर की लड़की नहीं है, केवल चचेरे भाइयों की बहन नहीं है, केवल अपरिचित पागल पति प्रवंचिता पत्नी नहीं है। वहां वह अनंत है।

मृत्यु की वह बांसुरी उस बालिका के भग्न हृदय से निकल कर जब मेरी जीवन-यमुना के तीर बजने लगी तो पहले-पहल मानो मेरी छाती में कोई बाण बिंध गया हो। मैंने विधाता से प्रश्न किया—संसार में जो कुछ सबसे अधिक तुच्छ है, वही सबसे अधिक कठिन क्यों है? इस गली में चार-दीवारी से घिरे इस निरानंद स्थान में यह जो तुच्छतम बुदबुदा है, वह इतनी भयंकर बाधा कैसे बन गया। तुम्हारा विश्व-जगत अपनी षट ऋतुओं का सुधा-पात्र हाथ में लेकर कितना ही क्यों न पुकारे, एक क्षण-भर के लिए भी मैं उस अंतःपुर की ज़रा-सी चौखट को पार क्यों न कर सकी? तुम्हारे ऐसे भुवन में अपना ऐसा जीवन लेकर मुझे इस अन्यंत तुच्छ काठ-पत्थर की आड़ में ही तिल-तिलकर क्यों मरना होगा? कितनी तुच्छ है, प्रतिदिन की यह मेरी जीवन-यात्रा? कितने तुच्छ हैं—इसके बंधे नियम, बंधे अभ्यास, बंधी हुई बोली और इन सबकी बंधी हुई मार! फिर भी क्या अन्त में दीनता के उस नागपाशी बंधन की ही जीत होगी और तुम्हारी अपनी सृष्टि के आनंदलोक की हार?

किन्तु, मृत्यु की बासुंरी बजने लगी! कहां गयी राजमिस्त्रयों की बनायी हुई वह दीवार, कहां गया तुम्हारे घोर नियमों से बंधा वह कांटो का घेरा? कौन-सा है वह दुख और कौन-सा है वह अपमान जो मनुष्य को बंदी बना कर रख सकता है? यह लो मृत्यु के हाथ में जीवन की जयपताका उड़ रही है! अरी मंझली बहू, तुझे अब डरने की कोई ज़रूरत नहीं। मंझली बहू के इस तेरे खोल को छिन्न होते एक क्षण भी नहीं लगा।

तुम्हारी गली का अब मुझे कोई डर नहीं है। मेरे सामने है आज नीला समुद्र और सर पर आषाढ़ के बादल!

तुम लोगों की रीति-नीति के अधंकार ने मुझे ढक रखा था। क्षण भर के लिए बिन्दु ने आकर उस आवरण के छिद्र से मुझे देख लिया। वही लड़की अपनी मृत्यु के ज़रिये मेरे समूचे आवरण को चिंदी-चिदी कर गयी। आज बाहर आकर देखती हूं, अपना गौरव रखने के लिए कहीं ठौर ही नही है। मेरा यह अनादृत रूप जिनकी आंखों को भाया है, वे चिर-सुदंर सम्पूर्ण आकाश से मुझे निहार रहे हैं। अब मंझली बहू मर चुकी है!

तुम सोच रहे होंगे कि मैं मरने जा रही हूं— डरो नहीं, तुम लोगों के साथ मैं ऐसा भी ठट्ठा नहीं करूंगी। मीराबाई भी तो मुझ जैसी ही नारी थी— उनकी शृखलाएं भी तो कम भारी नहीं थीं, मुक्ति के लिए उन्हें तो मारना नहीं पड़ा! मीराबाई ने अपनी वाणी में कहा है, 'भले ही बाप छोड़े, मां छोड़े, चाहें तो सब छोड़ दें, मगर मीरा की लगन वही रहेगी प्रभु, अब जो होना है सो हो।' यह लगन ही तो मुक्ति है।

मैं भी जीवित रहूंगी। मैं सदा-सर्वदा मुक्त हो गयी।

तुम्हारी शरण से विमुक्त

मृणाल